

सर्वोच्च न्यायलय का प्रतिवेदन

बिहार राज्य

बनाम

लेफ्टिनेंट कर्नल के. एस. आर. स्वामी

(के. एन. वांचू, के. सी. दास गुप्ता, जे. सी. शाह न्यायमूर्तिगण)

विषय : वन भूमि – पुनः अधिग्रहण – अथवा वन अधिकारी का आदेश किसे प्रधानता दी जाए – अधिकारों का लोप कब होता है – बिहार निजी वन अधिनियम, 1947 (बिहार अधिनियम सं. 9, 1948), धारा 30, प्रावधान – बिहार संरक्षित वन नियम, नियम 1 से 4, 8।

“उत्तरदाता एक भू-खंड का किरायेदार था जो वन क्षेत्र का हिस्सा था और बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1952 के अंतर्गत ज़मींदारी हित राज्य सरकार में निहित हो जाने के बाद भी वह उस भूमि पर कब्जे में बना रहा। सरकार ने इस वन को निजी संरक्षित वन घोषित करने का इरादा प्रकाशित किया और तत्पश्चात् भारतीय वन अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत अधिसूचना जारी कर दी, जिसके द्वारा इस और अन्य ‘संरक्षित वनों’ की भूमि को खेती के लिए तोड़ने या साफ़ करने पर रोक लगा दी गई। इसके परिणामस्वरूप वन विभाग के कर्मचारी उत्तरदाता द्वारा किए जा रहे कृषि कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। उत्तरदाता ने तब समाहर्ता से इस क्षेत्र में पुनः अधिग्रहण और खेती शुरू करने की अनुमति मांगी और समाहर्ता ने उसे यह कहते हुए अनुमति दी कि “आप इस क्षेत्र में पुनः अधिग्रहण और खेती का कार्य आगे बढ़ा सकते हैं।” परंतु वन अधिकारी ने समाहर्ता के आदेश की उपेक्षा की और उत्तरदाता को पुनः अधिग्रहण रोकने पर मजबूर किया। अंततः

सरकार ने हस्तक्षेप करते हुए समाहर्ता के आदेश को वापस लेने पर ज़ोर दिया। इस मामले में जिन प्रश्नों पर निर्णय करना आवश्यक हुआ, वे थे: (1) क्या *बिहार संरक्षित वन नियम* के नियम 4 के आधार पर वन अधिकारी द्वारा पारित आदेश—जो बिना अनुमति पेड़ों की कटाई या हटाने पर रोक लगाता है—समाहर्ता द्वारा नियम 8 के अंतर्गत दी गई अनुमति पर प्रधानता रखेगा? (2) क्या उत्तरदाता का भूमि पर अधिकार *बिहार निजी वन अधिनियम* की धारा 19 के अंतर्गत समाप्त हो चुका था?”

निर्णीत हुआ कि नियम 1 से 4 उन परिस्थितियों पर लागू होते हैं जहाँ पेड़ों की कटाई या हटाने के बाद भी वन *वन* ही बना रहता है। परंतु ये नियम उस कटाई पर लागू नहीं होते जो भूमि को खेती अथवा अन्य प्रयोजन हेतु साफ़ करने के लिए आवश्यक हो; ऐसी स्थिति केवल नियम 8 द्वारा नियंत्रित होती है। वर्तमान मामले में समाहर्ता द्वारा नियम 8 के अंतर्गत दी गई अनुमति विधि के अनुसार थी और न तो वन अधिकारी और न ही सरकार को इस अनुमति में हस्तक्षेप करने का कोई वैधानिक अधिकार था, चाहे वह भूमि की सफाई हो या खेती का कार्य।”

“अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत अधिकारों का *लोप* केवल धारा 30 के अंतर्गत अंतिम अधिसूचना के प्रकाशन के बाद ही संभव है। अधिनियम की जाँच-प्रक्रिया पूर्ण होने से पूर्व प्रावधान के अंतर्गत जारी अधिसूचना द्वारा अधिकारों का लोप नहीं किया जा सकता।”

1957 का दीवानी अपीलीये क्षेत्राधिकार संख्या 354

पटना उच्च न्यायालय द्वारा 7 अक्टूबर, 1955 को *विविध न्यायिक वाद सं. 422/1954* में पारित निर्णय एवं डिक्री से अपील।

पक्षकारों के अधिवक्ता - एल. के. झा, डी. पी. सिंह, आर. के. गर्ग, एम. के. राममूर्ति एवं एस.

सी. अग्रवाल —

अपीलकर्ता की ओर से।

बी. के. पी. सिन्हा एवं ए.जी. रत्नपारखी — उत्तरदाता की ओर से।

निर्णय दिनांक : 22 सितम्बर, 1961

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. सी. दास गुप्ता द्वारा दिया गया।

यह अपील राज्य बिहार द्वारा दायर की गई है, जिसमें पटना उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उत्तरदाता के आवेदन पर पारित आदेश की शुद्धता को चुनौती दी गई है। उत्तरदाता को नवंबर, 1945 में तत्कालीन जमींदार द्वारा गाँव सिंगपुर में 245.69 एकड़ भूमि पर किरायेदार के रूप में स्थापित किया गया था और बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1952 (बिहार अधिनियम सं. XXX/1952) के अंतर्गत जमींदारी हित राज्य बिहार में निहित हो जाने के बाद भी वह कब्जे में बना रहा। उस समय यह क्षेत्र वन भूमि था। 15 सितम्बर, 1946 को बिहार निजी वन अधिनियम, 1946 की धारा 14 के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित हुई, जिसमें सरकार ने इस वन को निजी संरक्षित वन घोषित करने का इरादा व्यक्त किया। उसी अधिसूचना में राज्यपाल ने आदेश दिया कि धारा 30 के अंतर्गत अंतिम अधिसूचना प्रकाशित होने तक वन से पेड़ों की कटाई, संग्रहण एवं हटाने के सभी अधिकार समाप्त रहेंगे, जो द्वितीय अनुसूची में निर्दिष्ट शर्तों एवं विनिर्देशों के अधीन होंगे। इस अधिसूचना का परिणाम यह हुआ कि इसके प्रकाशन के साथ ही उत्तरदाता का पेड़ों की कटाई, संग्रहण एवं हटाने का अधिकार समाप्त हो गया, जब तक कि यह वन निजी वन बना रहा। 6 अप्रैल, 1948 को धारा 30 के प्रावधान के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित हुई। तत्पश्चात् 30 दिसम्बर, 1952 को भूमि राज्य में निहित हो गई और 22

जनवरी, 1953 को एक अधिसूचना जारी हुई, जिसे दोनों पक्षों ने भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 29 के प्रावधान के अंतर्गत माना। इसके परिणामस्वरूप सिंगपुर गाँव के वन *संरक्षित वन* बन गए। 29 मई, 1953 को भारतीय वन अधिनियम की धारा 30 के अंतर्गत एक और अधिसूचना जारी हुई, जिसमें इन संरक्षित वनों की भूमि को खेती हेतु तोड़ने या साफ करने पर रोक लगा दी गई। इसके आधार पर वन विभाग के स्थानीय कर्मचारी उत्तरदाता द्वारा किए जा रहे कृषि कार्यों में हस्तक्षेप करने लगे। उत्तरदाता ने तब समाहर्ता गया से भूमि के पुनः अधिग्रहण एवं खेती की अनुमति मांगी। 22 अप्रैल, 1954 को समाहर्ता ने उत्तरदाता को अनुमति दी कि "आप इस क्षेत्र में पुनः अधिग्रहण एवं खेती का कार्य आगे बढ़ा सकते हैं।" परंतु वन अधिकारी ने समाहर्ता के आदेश की अवहेलना की और उत्तरदाता को पुनः अधिग्रहण रोकने पर मजबूर किया। अपीलकर्ता द्वारा इस पर आपत्ति करने पर समाहर्ता ने वन अधिकारी से स्पष्टीकरण मांगा कि उसने जानबूझकर आदेश की अवहेलना क्यों की। अंततः 10 जून, 1954 को बिहार सरकार ने समाहर्ता गया को तार संदेश भेजा कि 22 अप्रैल को उत्तरदाता को दी गई अनुमति को सरकार के निर्णय तक वापस लिया जाए। 11 जून, 1954 को समाहर्ता ने इस तार संदेश की प्रति उत्तरदाता को सूचना एवं आवश्यक कार्रवाई हेतु भेज दी।" ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इस विषय में सरकार द्वारा कोई और आदेश पारित किया गया हो। 2 अगस्त, 1954 को उत्तरदाता ने पटना उच्च न्यायालय में आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें यह प्रार्थना की गई कि बिहार सरकार द्वारा 10 जून, 1954 को समाहर्ता को दिए गए निर्देशों को निरस्त करने हेतु उपयुक्त वृत्त जारी किया जाए और बिहार सरकार तथा वन अधिकारी को उत्तरदाता के गाँव सिंगपुर स्थित भूमि पर कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाए।" "याचिकाकर्ता का कहना था कि वन भारतीय वन अधिनियम के अध्याय IV के अंतर्गत *संरक्षित वन* बन चुका था

और ऐसी स्थिति में भूमि को खेती हेतु साफ़ करने या तोड़ने की अनुमति देने के लिए *समाहर्ता* ही उचित एवं सक्षम प्राधिकारी था। यह अधिकार उसे भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 32 के अंतर्गत बिहार सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के *नियम 8* से प्राप्त था। याचिकाकर्ता का यह भी तर्क था कि न तो वन अधिकारी और न ही स्वयं बिहार सरकार को विधि के अनुसार उस अनुमति में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार था, और वह समाहर्ता की अनुमति के बल पर जो कार्य कर रहा था, उसमें कोई बाधा नहीं डाली जा सकती थी।” “याचिका का विरोध करते हुए *राज्य बिहार* ने यह तर्क दिया कि समाहर्ता का आदेश नियम 4 के सामने *निष्प्रभावी* है। यह नियम बिहार सरकार द्वारा भारतीय वन अधिनियम, 1927 की धारा 32 के अंतर्गत बनाए गए नियमों में सम्मिलित है, जिसमें यह प्रावधान है कि ‘कोई भी व्यक्ति उक्त वन से पेड़ों की कटाई, रूपांतरण या हटाने अथवा अन्य किसी प्रकार से पेड़ों से संबंधित कार्य नहीं करेगा, सिवाय नियम I, II और III के अनुसार।’”

“याचिका की सुनवाई के दौरान राज्य की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि विवादित भूमि पर याचिकाकर्ता का अधिकार *बिहार अधिनियम सं. IX, 1948* की धारा 19 के अंतर्गत समाप्त हो चुका था, क्योंकि बिहार सरकार ने धारा 30 के प्रावधान के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित कर दी थी। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया और यह मत व्यक्त किया कि अधिकारों का *लोप* केवल धारा 30 के अंतर्गत *अंतिम अधिसूचना* के प्रकाशन के बाद ही हो सकता है। चूँकि अंतिम अधिसूचना प्रकाशित नहीं हुई थी, धारा 19 इस मामले में लागू नहीं होती। उच्च न्यायालय ने यह भी माना कि जहाँ समाहर्ता ने *बिहार संरक्षित वन नियमों* के नियम 8 के अंतर्गत अनुमति प्रदान की है, वहाँ *विभागीय वन अधिकारी* को नियम

1 से 4 के आधार पर हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय ने याचिका स्वीकार की और आदेश पारित किया कि राज्य सरकार द्वारा 10 जून को तार संदेश द्वारा दिया गया निर्देश तथा वन अधिकारी द्वारा 1 मई को पारित आदेश—जिसमें याचिकाकर्ता को विवादित भूमि के पुनः अधिग्रहण से रोका गया था—दोनों को निरस्त किया जाए।”\

“इस न्यायालय में श्री झा ने वही दोनों बिंदु उठाए जिन पर उच्च न्यायालय में याचिका का विरोध किया गया था, अर्थात्— (1) कि याचिकाकर्ता का विवादित भूमि पर अधिकार *बिहार निजी वन अधिनियम* की धारा 19 के अंतर्गत समाप्त हो चुका था; और (2) कि *बिहार संरक्षित वन नियमों* के नियम 4 के आधार पर वन अधिकारी द्वारा पारित आदेश को नियम 8 के अंतर्गत *समाहर्ता* द्वारा दी गई अनुमति पर प्रधानता प्राप्त होनी चाहिए।”

“इस न्यायालय में श्री झा ने वही दोनों बिंदु उठाए जिन पर उच्च न्यायालय में याचिका का विरोध किया गया था, अर्थात्— (1) कि याचिकाकर्ता का विवादित भूमि पर अधिकार *बिहार निजी वन अधिनियम* की धारा 19 के अंतर्गत समाप्त हो चुका था; और (2) कि *बिहार संरक्षित वन नियमों* के नियम 4 के आधार पर वन अधिकारी द्वारा पारित आदेश को नियम 8 के अंतर्गत *समाहर्ता* द्वारा दी गई अनुमति पर प्रधानता प्राप्त होनी चाहिए।”

“*बिहार निजी वन अधिनियम, 1947* में *निजी संरक्षित वनों* से संबंधित प्रावधान अध्याय III में निहित हैं। इन प्रावधानों की योजना यह है कि राज्य सरकार जब यह संतुष्ट हो जाए कि जनहित में किसी निजी वन पर अध्याय के प्रावधान

लागू करना आवश्यक है, तो वह ऐसे वन को संरक्षित वन घोषित कर सकती है। पहला कदम धारा 14 के अंतर्गत अधिसूचना जारी करना है, जिसमें यह घोषित किया जाता है कि किसी वन को निजी संरक्षित वन बनाने का प्रस्ताव है और उन सभी ज़मींदारों से आपत्तियाँ आमंत्रित की जाती हैं जिनके हित प्रभावित हो सकते हैं। आपत्तियों की सुनवाई धारा 15 में प्रदान की गई है। इस धारा की उपधारा (3) में यह भी प्रावधान है कि यदि कोई आपत्ति प्रस्तुत नहीं की जाती या प्रस्तुत आपत्तियों का अंतिम निपटारा कर दिया जाता है, तो सरकार अधिसूचना जारी कर सकती है जिसमें क्षेत्र को निजी वन घोषित करने का निर्णय दर्ज किया जाता है और एक अधिकारी नियुक्त किया जाता है जो ज़मींदार के अधिकारों के अतिरिक्त अन्य अधिकारों के अस्तित्व, स्वरूप और सीमा की जाँच एवं निर्धारण करेगा। धारा 16 में यह प्रावधान है कि धारा 15(3) के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने पर *वन निपटान अधिकारी* एक उद्घोषणा प्रकाशित करेगा जिसमें कम से कम तीन माह की अवधि निर्धारित की जाएगी ताकि सभी व्यक्ति अपने अधिकारों (ज़मींदार के अधिकारों को छोड़कर) के संबंध में दावा प्रस्तुत कर सकें। धारा 17 वन निपटान अधिकारी को यह अधिकार देती है कि वह अधिसूचना के प्रत्युत्तर में प्रस्तुत सभी दावों की जाँच करे और उन अधिकारों की भी जाँच करे जिनका उल्लेख धारा 15(3) में है परंतु जिनका दावा धारा 16 के अंतर्गत प्रस्तुत नहीं किया गया। धारा 22 वन ठेकेदारों और अनुदानधारियों के दावों से संबंधित प्रक्रिया का प्रावधान करती है। धारा 23 में यह व्यवस्था है कि यदि किसी भूमि पर मार्ग का अधिकार, चराई का अधिकार, वन उत्पाद का अधिकार या जलधारा का अधिकार छोड़कर अन्य कोई अधिकार का दावा किया जाता है, तो वन निपटान अधिकारी उसे स्वीकार या अस्वीकार करने का

आदेश देगा, आंशिक या पूर्ण रूप से, धारा 25 और 26 के प्रावधानों के अधीन। धारा 27 उन व्यक्तियों को अपील का अधिकार देती है जिन्होंने धारा 16 या धारा 22 के अंतर्गत दावा प्रस्तुत किया है और जिनके दावे पर वन निपटान अधिकारी ने धारा 22, 23, 24 या 26 के अंतर्गत आदेश पारित किया है। अंततः धारा 30 में सरकार द्वारा निजी संरक्षित वन घोषित करने की अंतिम कार्रवाई का प्रावधान है। इस धारा का मुख्य भाग इस प्रकार है:—“जहाँ निम्नलिखित घटनाएँ घटित हो चुकी हों, अर्थात्—

(ए) धारा 16 के अंतर्गत दावे प्रस्तुत करने हेतु निर्धारित अवधि समाप्त हो गई हो और यदि कोई दावा प्रस्तुत किया गया हो तो उसे *वन निपटान अधिकारी* द्वारा निपटाया जा चुका हो; और

(बी) यदि ऐसा कोई दावा प्रस्तुत किया गया हो, तो धारा 27 के अंतर्गत अपील करने की निर्धारित अवधि समाप्त हो गई हो और उस अवधि के भीतर प्रस्तुत सभी अपीलों का *अपील अधिकारी* द्वारा निपटारा कर दिया गया हो; ऐसी स्थिति में राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित करेगी, जिसमें सीमा-चिह्नों द्वारा या अन्यथा निश्चित रूप से उस वन की सीमाएँ निर्दिष्ट की जाएँगी जिसे *निजी संरक्षित वन* के रूप में गठित किया जाना है, और अधिसूचना में निर्दिष्ट तिथि से वह वन *निजी संरक्षित वन* माना जाएगा।”

“यह प्रावधान इस प्रकार है: “परंतु यह कि यदि किसी वन के संबंध में, जिसके लिए धारा 14 के अंतर्गत अधिसूचना जारी की गई है, राज्य सरकार यह समझे कि इस अध्याय में वर्णित जाँच, प्रक्रिया और अपीलें इतनी लंबी अवधि लेंगी कि वन को

निजी संरक्षित वन घोषित करने में अनुचित विलंब होगा, और ऐसा विलंब राज्य सरकार की राय में जनहित के प्रतिकूल होगा, तो राज्य सरकार उक्त जाँच, प्रक्रिया और अपीलों की पूर्णता तक प्रतीक्षा किए बिना, इस धारा में निर्दिष्ट विवरणों वाली अधिसूचना द्वारा ऐसे वन को निजी वन घोषित कर सकती है।”

“यह पूर्णतः स्पष्ट है कि प्रावधान के अंतर्गत जारी अधिसूचना का उद्देश्य वन को निजी संरक्षित वन के रूप में अंतिम रूप से गठित करना नहीं है। यह अधिसूचना केवल ‘जाँच, प्रक्रिया और अपीलों की पूर्णता तक’ जारी की जाती है। स्पष्ट रूप से, प्रावधान के अंतर्गत की गई घोषणा से न तो जाँच, न ही प्रक्रिया और न ही अपीलें समाप्त होती हैं। इन्हें पूर्ण करना आवश्यक है और केवल उनकी पूर्णता के बाद ही सरकार धारा 30 के मुख्य भाग के अंतर्गत अधिसूचना जारी कर सकती है। इस धारा का यथोचित पठन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ सरकार प्रावधान के अंतर्गत घोषणा करती है, उसका प्रभाव केवल तब तक रहता है जब तक— (i) धारा 16 के अंतर्गत दावे प्रस्तुत करने की अवधि समाप्त नहीं हो जाती; (ii) धारा 16 और 22 के अंतर्गत प्रस्तुत दावों का निपटारा नहीं हो जाता; (iii) धारा 27 के अंतर्गत अपील करने की अवधि समाप्त नहीं हो जाती; और (iv) उन आदेशों के विरुद्ध प्रस्तुत सभी अपीलों का निपटारा नहीं हो जाता।”

“अब इस अध्याय की धारा 19 की ओर ध्यान देने पर यह स्पष्ट होता है कि इसमें यह व्यवस्था की गई है कि ‘जमींदार के अधिकारों को छोड़कर अन्य अधिकार, जिनके संबंध में धारा 16 के अंतर्गत कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया गया है और जिनके अस्तित्व का ज्ञान धारा 17 के अंतर्गत की गई जाँच से प्राप्त नहीं हुआ है, वे अधिकार लुप्त हो जाएँगे, जब तक कि धारा 30 के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित होने से पूर्व, दावा करने

वाला व्यक्ति वन निपटान अधिकारी को यह संतुष्ट न कर दे कि उसके पास धारा 16 के अंतर्गत निर्धारित अवधि में दावा प्रस्तुत न करने का पर्याप्त कारण था।”

“अपीलकर्ता का तर्क यह था कि ‘धारा 30 के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित होने’ में प्रावधान के अंतर्गत जारी अधिसूचना भी सम्मिलित है। अतः जब धारा 30 के प्रावधान के अंतर्गत अधिसूचना प्रकाशित हो जाती है, तो ज़मींदार के अधिकारों को छोड़कर अन्य सभी अधिकार—जिनके संबंध में कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया गया है और जिनके अस्तित्व का ज्ञान धारा 17 की जाँच से प्राप्त नहीं हुआ है—लुप्त हो जाते हैं।”

“यह तर्क हमारे विचार में पूर्णतः अस्वीकार्य है। अधिनियम में धारा 16 के अंतर्गत दावे प्रस्तुत करने, धारा 17 के अंतर्गत वन निपटान अधिकारी द्वारा उनकी जाँच करने और तत्पश्चात उन निर्णयों के विरुद्ध अपील करने की जो संपूर्ण प्रक्रिया निर्धारित की गई है, उसके पूर्ण होने के बाद ही अंतिम अधिसूचना द्वारा निजी वन को *निजी संरक्षित वन* घोषित किया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि *ज़मींदार के अधिकारों को छोड़कर अन्य अधिकार*, जिनके संबंध में धारा 16 के अंतर्गत कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया गया है या जिनका अस्तित्व धारा 17 की जाँच से सामने नहीं आया है, उनका *लोप* केवल अंतिम अधिसूचना के बाद ही होना था। यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 16 के अंतर्गत उद्घोषणा की तिथि से दावे प्रस्तुत करने के लिए तीन माह का समय दिया जाता है। धारा 17 के अंतर्गत जाँच तभी प्रारंभ हो सकती है जब ये दावे प्रस्तुत हो जाएँ और इस जाँच को पूर्ण करने में भी समय लगता है। जबकि धारा 30 के प्रावधान के अंतर्गत अधिसूचना धारा 14 की अधिसूचना जारी होने के बाद कभी भी की जा सकती है। अतः यह कहना निरर्थक है कि धारा 16 के अंतर्गत कोई दावा प्रस्तुत नहीं किया गया या धारा 17 की जाँच से कोई

अधिकार सामने नहीं आया, जबकि धारा 17 की जाँच की अवधि ही समाप्त नहीं हुई है। पुनः, धारा 19 के अंतर्गत अधिकारों का लोप तभी होगा जब दावा करने वाला व्यक्ति वन निपटान अधिकारी को यह संतुष्ट न कर सके कि उसके पास धारा 16 के अंतर्गत निर्धारित अवधि में दावा प्रस्तुत न करने का पर्याप्त कारण था। यह प्रश्न तभी उठ सकता है जब धारा 16 की अवधि समाप्त हो चुकी हो। इन सभी बातों से स्पष्ट है कि धारा 19 के अंतर्गत अधिकारों का लोप केवल अंतिम अधिसूचना के प्रकाशन के बाद ही संभव है।”

अब धारा 19 पर विचार करने के बाद यह आवश्यक है कि *संरक्षित वन नियमों* के नियम 1 से 4 के अंतर्गत वन विभाग के अधिकारियों के अधिकारों और नियम 8 के अंतर्गत *समाहर्ता* के अधिकारों के बीच उत्पन्न स्पष्ट संघर्ष पर ध्यान दिया जाए। नियम 1 के अंतर्गत, जो व्यक्ति *खसमहल भूमि* के वास्तविक निवासी हैं, वे अपने घरेलू उपयोग के लिए कुछ वृक्षों की कटाई, रूपांतरण और अपने घर ले जाने का अधिकार रखते हैं, किंतु वन अधिकारी अपने विवेक से इस विशेषाधिकार को वापस ले सकता है। कुछ अन्य वृक्षों की कटाई ऐसे वास्तविक निवासी वन अधिकारी की पूर्व अनुमति से कर सकते हैं। नियम 2 के अंतर्गत, वन अधिकारी लिखित आदेश द्वारा समीपवर्ती गाँवों के निवासियों को भी नियम 1 में उल्लिखित वृक्षों की कटाई और हटाने की अनुमति दे सकता है। नियम 3 में यह व्यवस्था है कि *विभागीय वन अधिकारी* किसी नगर या गाँव के निवासी को अपने उपयोग हेतु वृक्ष, लकड़ी या अन्य वन उत्पाद लेने का लाइसेंस दे सकता है, अथवा किसी भी व्यक्ति को व्यापार के उद्देश्य से वृक्ष काटने या हटाने की अनुमति दे सकता है, बशर्ते कि वह *मुख्य वन संरक्षक* द्वारा स्वीकृत प्रचलित दरों पर शुल्क का भुगतान करे। नियम 4, जिस पर राज्य की ओर से विशेष बल दिया गया है, इस प्रकार है: ‘कोई भी व्यक्ति उक्त वन से वृक्ष, लकड़ी या अन्य वन उत्पाद की कटाई, रूपांतरण या हटाने अथवा अन्य

किसी प्रकार से व्यवहार नहीं करेगा, सिवाय नियम 1, 2 और 3 के प्रावधानों के अनुसार।' इसके विपरीत, नियम 8, जिसके अंतर्गत समाहर्ता ने अनुमति दी थी, इस प्रकार है: 'उक्त वन की भूमि को खेती अथवा अन्य किसी उद्देश्य के लिए साफ़ या तोड़ा नहीं जाएगा, जब तक कि समाहर्ता की लिखित अनुमति प्राप्त न हो।' यहाँ स्पष्ट संघर्ष दिखाई देता है—क्योंकि जहाँ नियम 4 के अंतर्गत वृक्षों की कटाई, रूपांतरण या हटाना केवल नियम 1, 2 और 3 के अंतर्गत दी गई अनुमति या लाइसेंस से ही संभव है, वहीं नियम 8 के अंतर्गत समाहर्ता द्वारा भूमि को खेती अथवा अन्य प्रयोजन हेतु साफ़ करने या तोड़ने की लिखित अनुमति दी जा सकती है, जिसमें स्वाभाविक रूप से वृक्षों की कटाई और हटाना सम्मिलित होगा।"

"अपीलकर्ता-राज्य की ओर से श्री झा ने यह तर्क दिया कि नियम 8 का कोई प्रभाव तब तक नहीं है जब तक वन में वृक्ष खड़े हैं। उनका कहना था कि केवल तब, जब वृक्ष नियम 1, 2 और 3 के प्रावधानों के अंतर्गत काटे या हटाए जा चुके हों और केवल उनके ढूँठ शेष हों, तभी समाहर्ता वन भूमि को साफ़ करने या खेती हेतु तोड़ने की अनुमति दे सकता है।

"वर्तमान मामले में, जब भूमि पर स्थित किरायेदार ने भूमि को खेती हेतु साफ़ करने की अनुमति माँगी और इस साफ़ करने की प्रक्रिया में वृक्षों की कटाई एवं हटाना सम्मिलित था, तो नियम 1 से 4 लागू नहीं होते थे और नियम 8, जिसके अंतर्गत समाहर्ता ने कार्य किया, लागू होता था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि नियम 8 नकारात्मक रूप में लिखा गया है, परंतु इसे 'गर्भित निषेध' कहा गया है—एक ओर यह कहता है कि वन की भूमि को खेती अथवा अन्य प्रयोजन हेतु समाहर्ता की लिखित

अनुमति से साफ़ या तोड़ा जा सकता है, और दूसरी ओर यह कहता है कि ऐसी अनुमति के बिना भूमि को साफ़ या तोड़ा नहीं जा सकता। अतः वर्तमान मामले में *समाहर्ता* द्वारा दी गई अनुमति विधि के अनुसार थी और न तो वन अधिकारी और न ही सरकार को उस अनुमति में हस्तक्षेप करने का कोई वैधानिक अधिकार था।”

“अपीलकर्ता-राज्य की ओर से श्री झा का अंतिम तर्क यह था कि 29 मई, 1953 को राज्य सरकार द्वारा *भारतीय वन अधिनियम, 1927* की धारा 30 के अंतर्गत जारी अधिसूचना—जिसमें संरक्षित वन की भूमि को खेती अथवा अन्य प्रयोजन हेतु साफ़ करने या तोड़ने पर रोक लगाई गई थी—को *समाहर्ता* द्वारा दी गई अनुमति पर प्रधानता प्राप्त होनी चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि जहाँ धारा 30 राज्य सरकार को संरक्षित वन की भूमि को खेती अथवा अन्य प्रयोजन हेतु साफ़ करने या तोड़ने पर रोक लगाने का अधिकार देती है, वहीं धारा 32 राज्य सरकार को नियम बनाने का अधिकार देती है ताकि संरक्षित वन में भूमि को खेती अथवा अन्य प्रयोजन हेतु साफ़ करने और तोड़ने की प्रक्रिया को विनियमित किया जा सके। यदि विधायिका ने इस विषय में और कुछ न कहा होता, तो यह तर्क दिया जा सकता था कि अधिसूचना द्वारा लगाया गया निषेध धारा 32 के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अधीन दी गई अनुमति के सामने झुक जाएगा। किंतु इस संबंध में सभी संदेहों का निवारण अधिनियम की धारा 34 करती है, जिसका प्रावधान इस प्रकार है: —”

“इस अध्याय में ऐसा कुछ भी नहीं माना जाएगा जो वन अधिकारी की लिखित अनुमति से किए गए किसी कार्य को, अथवा धारा 32 के अंतर्गत बनाए गए नियमों के अनुसार किए गए कार्य को निषिद्ध करता हो; सिवाय उस वन के

किसी भाग के संबंध में जो धारा 30 के अंतर्गत बंद किया गया हो, अथवा उन अधिकारों के संबंध में जिनका प्रयोग धारा 33 के अंतर्गत निलंबित कर दिया गया हो, अथवा धारा 29 के अंतर्गत दर्ज किसी अधिकार के प्रयोग के संबंध में।”

इससे स्पष्ट और आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमि को साफ करने पर अधिसूचना द्वारा लगाया गया निषेध अप्रभावी होगा, जहाँ ऐसी साफ-सफाई धारा 32 के अंतर्गत बनाए गए नियम 8 के अनुसार की जा रही हो।

अतः अपील में उठाए गए सभी तर्क असफल होते हैं। हमारे विचार में राज्य सरकार के पास कोई वैधानिक अधिकार नहीं है कि वह उत्तरदाता द्वारा भूमि की साफ-सफाई अथवा खेती में हस्तक्षेप करे, जब यह कार्य *समाहर्ता* द्वारा संरक्षित वन नियमावली, 1953 के नियम 8 के अंतर्गत दी गई लिखित अनुमति के अनुसार किया जा रहा हो।”

“ऐसा प्रतीत होता है कि किसी त्रुटि के कारण उच्च न्यायालय ने *प्रतिषेधात्मक आदेश* जारी करने का निर्देश दिया, जबकि याचिकाकर्ता ने *अनुज्ञात्मक आदेश* की प्रार्थना की थी। यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले की परिस्थितियों में उपयुक्त आदेश का है। अतः हम उच्च न्यायालय के आदेश को इस सीमा तक संशोधित करते हैं कि का आदेश जारी किया जाए, जिसके द्वारा अपीलकर्ता-राज्य सरकार को निर्देश दिया जाए कि वह *समाहर्ता* पर दिनांक 10 जून, 1954 को पारित अपना आदेश निरस्त करे और सरकार तथा वन अधिकारी को याचिकाकर्ता के *गाँव सिंगपुर* स्थित 245.69 एकड़ भूमि पर, जिसे वह किरायेदार के रूप में धारण करता है, उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका जाए।

अपील व्यय सहित निरस्त की जाती है।

अपील निरस्त।

खंडन - स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।